इकाई 15 सामाजिक लिंग सोच (जेंडर), स्थिति और सत्ताधिकार

इकाई की रूपरेखा

15.0 उद्देश्य

इस इकाई को पढ़ लेने के बाद आप:

- उत्पादन और जनन से जुड़े मुद्दों की रोशनी में सामाजिक लिंग सोच (जेंडर) जन्य संबंधों के स्वरूप को समझ सकेंगे; और
- समदृष्टि के मुद्दों में सामाजिक संस्थाओं की भूमिका को जान सकेंगे।

15.1 प्रस्तावना

पूरी दुनिया में महिलाओं को निजी विकास और सामाजिक विकास के लिए शिक्षा, रोजगार, विवाह और परिवार, व्यावसायिक और राजनीतिक जीवन में पुरुषों के बराबर अवसर नहीं दिए जाते हैं। भारत और विकसित देशों की महिलाओं की कई समस्याएं समान हैं। लेकिन भारत में महिलाओं को जो भेदभाव सहना पड़ता है, वह बड़ा ही व्यापक और गहरा है। इसका कारण भारतीय समाज का लिंग के आधार पर पृथक होना तथा निर्धनता और पारंपरिक मूल्य व्यवस्था हैं।

सामाजिक लिंग सोच जन्य संबंधों के स्वरूप और आधार के साथ-साथ महिलाओं के जीवन, उनके सरोकारों और सोच को समझने के लिए जरूरी है कि पहले हम सत्ताधिकार के आयामों को समझें। असल में समाज में महिलाओं की स्थिति या स्थान का पूरा सवाल इस मुद्दे पर निर्भर करता है कि पुरुषों की तुलना में उन्हें कितना सत्ताधिकार प्राप्त है। सत्ताधिकार की कई तरह से व्याख्या की गई है। स्वायत्त्ता, प्रभाव, अन्य लोगों के लिए निर्णय करने के अधिकार, हेरफेर करने की क्षमता, सम्प्रदाय के अधिकार ढांचे में संस्थागत पद-स्थान, अन्य लोगों को हानि पहुंचाने या उन्हें लाभ पहुंचाने की अलौकिक शक्ति इत्यादि के रूप में इसे देखा जा सकता है।

सामाजिक लिंग जन्य सोच पर अंत:संस्कृति शोध में लगे विद्वानों में लगभग आम सहमति है कि किसी भी समाज में महिलाओं को निर्णय करने के अधिकार के मूल में उसमें विद्यमान उत्पादन और जनन का ढांचा है।

15.2 सामाजिक लिंग सोच जन्य असमानता और जनन के मुद्दे

आइए अब हम सामाजिक लिंग सोच जन्य असमानता के मुद्दों जैसे मातृत्व, वंशागति, जननक्षमता इत्यादि पर चर्चा करें।

15.2.1 मातृत्व

नारी के अस्तित्व की धुरी मातृत्व ही है क्यों कि यह सबसे प्रामाणिक जैविक अनुभव है जो स्त्री को पुरुष से विशिष्ट और अलग खड़ा करती है। मानव जाति के जनन में स्त्री की भूमिका पुरुष से कहीं ज्यादा है। मनुष्य की जननी स्त्री ही है। मातृत्व और जनन के कृत्य को आम तौर पर जुड़ा माना जाता है। मगर विडंबना है कि नए जीवन के सृजन और उसे बनाए रखने का जो कृत्य मानव जाति की अस्मिता के लिए नितांत जरूरी है वही स्त्री की पराधीनता का साधन बन गया। मातृत्व-संबंधी दायित्व का बहाना लेकर स्त्री को सत्ताधिकार, सत्ता, निर्णय और सार्वजनिक जीवन में सहभागी भूमिका से बाहर कर दिया गया। मातृत्व और जननकृत्य का नियंत्रण उसके हाथ में कभी नहीं रहता।

भारतीय नारी की स्थिति पर दृष्टिपात करते हुए कृष्णराज कहती हैं कि जो जननात्मक भूमिका मूलत: नारी शक्ति का स्रोत थी उसी ने उसे विशेषकर पुरुष के प्रभुत्व में लाकर, उसके अधीन बनाकर शक्तिहीन बना दिया। स्त्री को जमीन के रूप में देखा जाता है, जो बीज (वीर्य) के स्वामी के अधिकार में रहती है। इस तरह नारी के मातृत्व ने उसे पुरुष नियंत्रण और वर्चस्व के आगे लाचार बना दिया। न्यूनतम सुरक्षा जैसे सही पोषण, सुरक्षित प्रसव गर्भावस्था के दौरान पर्याप्त देखभाल, बच्चे की देखभाल की सुविधाओं से वंचित रहने के कारण मातृत्व भारतीय कामकाजी महिलाओं के लिए, विशेषकर गरीब देहातों में, अत्यधिक कठिन और पीड़ादायक कार्य बन जाता है। राज्य की ओर से मातृत्व को विचाराधारा के स्तर पर और भौतिक सहायता के रूप में जो प्रोत्साहन मिलता है, उसे भी पितृसत्तात्मक कहकर चुनौती दी जाती है, क्योंकि इससे महिलाएं अपने मातृत्व को भौतिक दृष्टि से सशक्तीकारी बनाने से वंचित रह जाती हैं।

15.2.2 वंशक्रम

प्राचीन काल से ही भारत में मानव के जनन को नर बीज के रूप में देखा जाता रहा है जो मादा भूमि में अंकुरित होता है। इसे हम तमाम धार्मिक ग्रंथों में और विवाह संस्कारों और जीवन में शोक की स्थितियों के दौरान देख सकते हैं। इनकी उत्पत्ति वैदिक काल में हुई थी। मनु स्मृति जैसी संहिताएं इस अवधारणा के आधार पर ही मिश्र विवाहों से उत्पन्न होने वाली संतान की हैसियत और मिश्र विवाहों की मर्यादा का निर्धारण करती हैं।

मानव जनन की प्रक्रिया को लेकर शुरू में जो धारणा बनी युगों बाद वही साहित्य परंपरा और जन चेतना का अंग बन गई। लीला दुबे के अनुसार आयुर्वेद में हमें जो आयुर्विज्ञान मिलता है उसमें वंशक्रम में स्त्री के योगदान को स्वीकार किया गया है। लेकिन जन संस्कृति में इसी धारणा को प्रचारित किया गया कि बच्चा पुरुष का खून होता है क्योंकि वीर्य को उसके रक्त से उपजा माना जाता था। मगर दूसरी ओर कई मातृवंशीय जनजातियों में स्त्री की श्रेष्ठ जननात्मक भूमिका को स्वीकार किया जाता है।

गर्भधारण को जिस तरह भूमि में बीज बोने के रूप में लिया जाता है उसके निहितार्थों को वंश के जैविक प्रतीकीकरण, स्त्री-पुरुष के बीच संबंधों और उनके सापेक्षिक अधिकारों और उनके स्थान को समझने के लिए प्रयोग किया जाता है। इससे दो बातें उठती हैं। पहली बात यह है कि इन प्रतीकों के प्रयोग से मूलत: असमान संबंध प्रतिबिंबित होता है। दूसरा इस प्रतीकवाद को संस्कृति जैविक जनन में नारी के योगदान की महत्ता को नकारने के लिए बढ़ा चढ़ाकर प्रयोग करती है। नारी को मातृत्व के कर्तव्य से बांधकर यही प्रतीकवाद उसे अपनी ही संतान पर स्वाभाविक अधिकार से वंचित करने का बायस बन जाता है। यही नहीं यह एक ऐसी विचारधारा का सृजन करता है और उसे बनाए रखता है, जिसमें भौतिक और मानव दोनों किस्म के सामरिक संसाधन पुरुषों के हाथों में सिमटे रह जाते हैं।

15.2.3 जननक्षमता

विभिन्न अंचलों और ऊंची और छोटी जातियों के बीच आचरण में विद्यमान अंतर को छोड़ दें तो भारत में आम तौर पर महिला में निजी विकास का जो बोध देखने को मिलता है उसका संबंध उसकी जननक्षमता और पुत्रों की मां बनने पर उसे जो सामाजिक प्रतिष्ठा मिलती है उससे जुड़ा है। लिंग के आधार पर विभाजित समाज में उच्च जनन क्षमता महिलाओं की स्थिति को कई तरह से प्रभावित करती है। पहला, बहुत ही कच्ची उम्र में पहले बच्चे के पैदा हो जाने, बार-बार गर्भधारण करने और उस पर कुपोषण इन सब के फलस्वरूप मातृ मृत्युदर और गर्भपात की दर अधिक रहती है। दूसरा, महिलाएं बच्चों की देखभाल, घर के कामकाज और खेतीबाड़ी के काम से इस कदर बंध जाती हैं कि मां-पत्नी के मुख्य भूमिका के अलावा उसके पास अपने निजी विकास के खास विकल्प नहीं रहते। तीसरा, जननात्मक कार्य को चूंकि इतना ज्यादा महत्व दिया जाता है कि उन्हें कम उम्र में ही विवाह और मातृत्व के दायित्व से लाद दिया जाता है, इसलिए लड़कियों की औपचारिक शिक्षा को अप्रासंगिक माना जाता हैं। कच्ची उम्र में विवाह और महिला शिक्षा के प्रति ऐसे नजरिए के कारण ही महिलाओं में निरक्षरता की दर इतनी अधिक है।

15.3 सामाजिक लिंग सोच जन्य असमानता और उत्पादन के मुद्दे

पुरुष का अधिकार सिर्फ स्त्री की लैंगिकता और जनन क्षमता तक ही सीमित नहीं है। बल्कि उसकी उत्पादक क्षमता और श्रम शक्ति पर भी पुरुष का ही अधिकार है। पुरुष को जिस तरह नारी की लैंगिकता और उसकी लैंगिकता के फल पर नियंत्रण रखने का अधिकार है उसी प्रकार उसके श्रम और उसके श्रम से मिलने वाली आमद पर भी उसे ही अधिकार है। उत्पादन की प्रक्रिया में उसकी भागीदारी कितनी है इससे उसके योगदान को नहीं आंका जाता क्योंकि उत्पादन के संसाधनों के मामले में वह पुरुष पर आश्रित है। उसकी हैसियत सिर्फ घरेलू मजदूर की है। घर या आश्रय के मामले में भी वह पराश्रित मानी जाती है, क्योंकि कानूनन और रीति-रिवाज के अनुसार वैवाहिक घर बनाने का अधिकार भी पुरुष को ही है। जन-मानस में यह धारणा गहरी बैठी हुई है कि पुरुष ही आश्रयदाता और अन्नदाता है। इसलिए इसमें कोई अचरज नहीं कि खेती-बाड़ी और अन्य उत्पादक कार्यों में महिलाओं की भूमिका को गौण माना जाता है। उसकी आमदनी पर उसका कोई नियंत्रण नहीं रहता क्योंकि वह अपने पति के घर में रहती है और उसी की कमाई खाती है। ये बात दीगर है कि एक तरह से वह भी कमा रही होती है। यह तर्क उस स्थिति में भी लागू होता है, जहां स्त्री दिहाड़ी मजदूर का काम कर रही हो। अर्थ-व्यवस्था में महिला के योगदान को मान्यता नहीं देना या उसे बिल्कुल कम करके आंकना कोई अलग बात नहीं है। इसके सूत्र पितृसत्तात्मक विचारधारा से जुड़े हैं जिसका प्रचार तरह-तरह से किया जाता है।

श्रम के लैंगिक विभाजन के आधार पर पेशागत पार्थक्य के कारण शिक्षित महिलाओं की एक बड़ी संख्या नर्सिग, अध्यापन और क्लर्की जैसे कामों में पाया जाता है। गिनी चुनी महिलाएं ही इंजीनियरिंग, प्रौद्यागिकी, विज्ञान, राजनीति और प्रशासन को अपना व्यवसाय बना पाती हैं। व्यावसायिक पार्थक्य के इस पैटर्न और कार्यकारी अधिकारी और नेतृत्व वाले पद-स्थानों से महिलाओं को बाहर रखे जाने के कई कारण हैं। पहला कारण है, परिवार में समाजीकरण और स्कूली शिक्षा जो सामाजिक लिंग सोच जन्य भूमिकाओं को स्थापित करते हैं। इसका यही मतलब है कि इनके जरिए पुरुष और स्त्री के लिए उचित गुणों और आचरण की सांस्कृतिक परिभाषा बताई जाती है और उन्हीं के अनुसार उन्हें ढाला जाता है। स्कूल में लड़कियों को ऐसे कुछ सीमित व्यवसायों की ओर जाने की सीख दी जाती है, जिन्हें स्त्रियोचित और पत्नी और उनकी मुख्य लिंग भूमिकाओं की जरूरतों के अनुरूप माना जाता है। व्यावसायिक और सेवा क्षेत्र में महिलाओं की संख्या बढ़ने के बावजूद भी सत्ताधिकार, प्रतिष्ठा और विशेषाधिकार रखने वाले व्यावसायिक पदों के वितरण में लैंगिक समानता कहीं नजर नहीं आती।

बोध प्रश्न 1

1) भारतीय समाज में सामाजिक लिंग सोच संबंधों को प्रभावित करने वाले मुख्य जननात्मक मुद्दे क्या हैं? चार पंक्तियों में बताइए।

....

....

....

....

2) महिलाओं को नर्सिंग, अध्यापन जैसे स्त्रियोचित पेशों में ले जाने वाले कारक क्या हैं?

....

....

....

....

a) समाजीकरण b) शिक्षा c) संचार माध्यम d) संस्कृति

1) सिर्फ a

2) सिर्फ b

3) सिर्फ c

4) सिर्फ d

5) सभी

15.4 सामाजिक संस्थाओं की भूमिका

अब हम सामाजिक लिंग सोच संबंधों को जाति, धर्म और विवाह जैसी सामाजिक संस्थाओं के प्रकाश में देखेंगे।

भारत के सिद्ध समाजशास्त्री एम.एन. श्रीनिवास कहते हैं: "इसके (भारतीय नारी की बदलती स्थिति के) कई आयाम हैं और विभिन्न अंचलों, ग्रामीण और शहरी क्षेत्रों, वर्गों और विभिन्न धार्मिक, जातीय और जाति समूहों में भारी अंतर होने के कारण सामान्यीकरण असंभव है।" प्रसिद्ध इतिहासकार रोमिला थापर भी कहती हैं कि "भारतीय उपमहाद्वीप के अंदर महिलाओं की स्थिति में असंख्य अंतर विद्यमान हैं जो सांस्कृतिक परिवेश, परिवारिक ढांचे, वर्ग, जाति, संपत्ति अधिकारों और नैतिक मूल्यों के अनुसार अलग-अलग दिशा में बिखर जाते हैं।"

प्राचीन समाज में नारी की स्थिति क्या थी इसका सही-सही आकलन करने के लिए स्तरीकरण पद्धति का संक्षेप में उल्लेख करना जरूरी है जिसकी अभिव्यक्ति वर्ण और जाति व्यवस्था में मिलती है। नारी के श्रम और उसकी लैंगिकता पर नियंत्रण बनाए रखने की युक्ति के रूप में जाति, अंतर्विवाह जैसी विशेषता, समूहों को पृथक करने के साथ-साथ महिलाओं की गतिशीलता को नियंत्रित करने वाली शुद्धि और अशुद्धिता की धारणाएं इसमें बहुत महत्व रखती हैं। महिलाओं को कुछ खास तरह के काम तो पुरुषों को कुछ खास तरह के काम करने होते हैं। जैसे खेती बाड़ी में महिलाएं पानी लगाने, रोपाई करने, गुड़ाई-निराई जैसे काम तो कर सकती है लेकिन वे हल नहीं चला सकतीं हैं। फिर समूह विशेष के ऊर्ध्वगामी होने यानी उसका सामाजिक स्तर ऊंचा होने पर महिलाओं को बाहरी काम से हटा दिया जाता है। महिलाओं को कुछ खास क्रिया-कलापों से रोकने और उन्हें कुछ विशेष अधिकारों से वंचित करने वाले अप्रत्यक्ष नियम भी प्रचलन में हैं। लेकिन पितृसत्ता की सूक्ष्म अभिव्यक्ति प्रतीकवाद के जरिए होती है। यह प्रतीकवाद किंवदंतियों और आनुष्ठानिक रीति-रिवाजों के जरिए स्त्रियों की हीनता उनकी तुच्छता का संदेश प्रचारित करता है। किंवदंतियों में नारी की आत्मोत्सर्गी, पवित्र छवि को दर्शाया जाता है, जो अनुष्ठान निष्ठावान पत्नी और समर्पित मां के रूप में नारी की भूमिका को स्थापित करते हैं।

स्तर और शक्ति पर चचा करती हुई ग्रामीण महिलाएँ
साभार : किरणमई बुसी

स्त्रियों और शूद्रों को एक ही दर्जा देना समाज में महिलाओं की निम्न स्थिति का एक और प्रमाण है। महिलाओं और शूद्र दोनों को यगोपवीत संस्कार (जनेऊ धारण) से प्रतिबंधित रखना, शूद्र और नारी की हत्या करने पर समान दंड, और दोनों को धार्मिक विशेषाधिकारों से वंचित रखा जाना, ये सब कुछ ऐसे उदाहरण हैं जो बताते हैं कि जाति और सामाजिक लिंग सोच ने जनमानस में किस तरह गहरी पैठ बनाई होगी।

15.4.2 सामाजिक लिंग सोच और धर्म

अधिकांश धर्मों में मानव प्रकृति की अनिवार्य समानता, सभी मनुष्यों की नैसर्गिक महत्ता की बात कही जाती है क्योंकि स्त्री और पुरुष सभी में एक ही आत्मा होती है और सभी में परमात्मा वास करता है। मगर यह महान दर्शन, यह महान आदर्श व्यवहार में कहीं नजर नहीं आता। बल्कि जो नैतिक शिक्षा और धार्मिक प्रवचन हमें मिलते हैं वे सभी एक खास परिवेश में स्त्री की स्थिति को प्रतिबिंबित करते हैं। हमारे कई पवित्र ग्रंथों में महिलाओं को पुरुषों से नीचे का दर्जा दिया गया है। महिलाओं की निम्न स्थिति को वैधता प्रदान करने के लिए युगों से इन पवित्र ग्रंथों का हवाला देकर उसे आध्यात्मिक आधार दिया जाता रहा है। ग्रंथ पवित्र सत्ता हैं जो बताते हैं कि महिलाओं की हैसियत पुरुषों से कम और असमान होनी चाहिए।

भारतीय समाज में मूल्य संरचना को समझने के लिए उसका एक महत्वपूर्ण पहलू हिंदू दर्शन में नारी की दोहरी अवधारणा है। एक ओर स्त्री को जननी, कल्याणकारी, समृद्धि दात्री का दर्जा दिया जाता है। लेकिन दूसरी ओर उसे उग्र, अपकारी और विध्वंसक माना जाता है। नारी का यह दोहरा चरित्र हमें देवियों में भी नजर आता है। जैसे एक तरफ काली और दुर्गा मां जैसी विकराल, उग्र, अपकारी देवियां हैं तो वहीं लक्ष्मी, सरस्वती, मरियम्मा जैसी कल्याणकारी, ममतामयी देवियां भी हैं। संक्षेप में नारी के दोहरे चरित्र का निरूपण करके मूल्यों के ढांचे संरचना ने यह मिथ रचा है कि भारतीय नारी में शक्ति है लेकिन वह दिखाई नहीं देती। यह भारत में महिलाओं की ऊंची और निम्न स्थिति को समझने के लिए एक अति महत्वपूर्ण धारणा है। इसीलिए हमारे सामने ऐसी विरोधाभासी स्थिति आ जाती है जिसमें धर्म कहीं मां और पत्नी की आदर्श भूमिका में नारी को एम सर्वोच्च सम्मान देता है तो वहीं उसमें नारी के आदर्श को उसके शाश्वत सार में दर्शाया जाता है। लेकिन वास्तविक सामाजिक जीवन में पराधीनता ही नारी की नियति है।

आज एकदम भिन्न सामाजिक परिस्थितियों में धर्म को एक नई चुनौती का सामना करना पड़ रहा है। अब चूंकि नारी की सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक मुक्ति को सभी जगह स्वीकार किया जा रहा है, इसके चलते सामाजिक परिवेश सभी धार्मिक परंपराओं पर नए दबाव डाल रहा है और नारी की सामान्य स्थिति या छवि के बारे में उनकी शिक्षाओं को अब समूल चुनौती दी जा रही है।

15.4.3 सामाजिक लिंग सोच और विवाह नियमन

अनुलोम और प्रतिलोम विवाह की धारणा अपनी परिभाषा से ही महिलाओं के लिए अपमानजनक है। ऐसे विवाह जिसमें ऊंची जाति का वर निम्न जाति की वधू से विवाह करता है, उसे अनुलोम विवाह के रूप में स्वीकार किया जाता है। लेकिन अनुष्ठान की दृष्टि से पवित्र समूहों की स्त्री के निम्न अनुष्ठानिक स्थिति वाले पुरुष से विवाह को प्रतिलोम विवाह की संज्ञा दी जाती है। नियमों का उल्लंघन करने पर बहिष्कार और मृत्युदंड जैसा कठोर दंड दिया जाता था। जाति नियमों के द्वारा शारीरिक गतिशीलता पर भी अंकुश लगाया जाता है। समाज में नारी की निम्न स्थिति का एक महत्वपूर्ण प्रतीक यह है कि निम्न जातियों की स्त्रियां तो ऊंची जाति के पुरुषों के लिए सुलभ हैं लेकिन वहीं ऊंचे जाति समूहों की स्त्रियों से प्रणय का दुस्साहस करने वाले निम्न जाति के पुरुषों को कठोर दंड दिया जाता है। कच्ची उम्र में विवाह, जाति और उपजाति के भीतर ही विवाह, प्रतिलोम विवाह पर प्रतिबंध, विवाह को अटूट पवित्र बंधन मानना जिसके बंधन में स्त्री को मृत्यु तक बंधे रहना पड़ता है, ये सभी प्रथाएं लैंगिकता के नियंत्रण को दर्शाती हैं।

बोध प्रश्न 2

1) भारत में जाति संस्था किस तरह से अन्यायपूर्ण सामाजिक लिंग सोच जन्य संबंधों को जन्म देती है? चार पंक्तियों में बताइए।

....

....

....

....

15.5 सारांश

मौजूदा सामाजिक ढांचे और उसमें महिलाओं की स्थिति को अच्छे ढंग से समझने के लिए यह बेहद जरूरी है कि समाज को ढालने वाले विभिन्न कारकों और संस्थाओं के प्रभावों को जाना जाए, उन्हें समझा जाए। नारी की लैंगिकता सत्ताधिकार, वासना और वासना के त्याग की स्थली है। लिंग पर आधारित भेदभाव मूलत: अन्यायपूर्ण है। यह मानव गरिमा के प्रति अपराध और मानवाधिकारों का हनन है। इसलिए महिलाओं की स्थिति उनकी हैसियत मानवाधिकारों और सामाजिक न्याय की दृष्टि से महत्वपूर्ण है। सामाजिक उन्नति और विकास के लिहाज से भी इसके निहितार्थ महत्वपूर्ण हैं।

15.6 शब्दावली

सामाजिक लिंग सोच (जेंडर) : समाज द्वारा तय अपेक्षाएं जो पुरुष और स्त्री से की जाती हैं। सामाजिक लिंग सोच (जेंडर) वृहत्तर स्तरीकरण प्रणाली में एक घटक है जिसमें व्यक्तियों और समूहों की श्रेणी समाज में उपलब्ध मूल्यवान संसाधनों तक उनकी पहुंच के अनुसार तय की जाती है।

सामाजिक लिंग सोच जन्य असमानता : इसका अभिप्राय समाज में संसाधनों का वितरण लिंग के आधार पर किए जाने से है। यह अवधारणा हमें समाज में पुरुषों और स्त्रियों के सापेक्षिक लाभ और हानियों के बारे में बताती है।

स्थिति/हैसियत — इसे प्रतिष्ठा के पर्याय के रूप में प्रयोग किया जाता है। लेकिन समाजशास्त्रीय और नृवैज्ञानिक व्यवहार में इसका अर्थ सामाजिक ढांचे में पद-स्थान के रूप में लिया जा सकता है। भूमिका सिद्धांत में स्थिति और भूमिका के बीच भेद वही है जो सामाजिक स्थान और उस पर आसीन व्यक्ति से अपेक्षित आचरण के बीच है।

शक्ति/सत्ताधिकार: — अन्य लोगों के आचरण को उनकी इच्छा से या उसके बिना प्रभावित करने की क्षमता।

15.7 कुछ उपयोगी पुस्तकें

देसाई, नीरा और मैत्रेयी कृष्णराज (1987) *वीमेन एंड सोसाइटी इन् इंडिया*, दिल्ली, अजंता पब्लिकेशन

दुबे, लीला, एलीनर लीकॉक और शर्ले आर्डनर (संपा.) 1986; *विजिबिलिटी एंड पावर*, दिल्ली ऑक्सफर्ड यूनि. प्रेस

राजन सुंदर राजेश्वर (संपा.) (1999) *जेंडर इशूज इन पोस्ट इनडिपेंस इंडिया*, नई दिल्ली, काली फॉर वीमेन

15.7 बोध प्रश्नों के उत्तर

बोध प्रश्न 1

1) सामाजिक लिंग सोच जन्य संबंधों को प्रभावित करने वाले कारक मातृत्व, आनुवंशिकता ओर जनन क्षमता हैं। बिडंबना यह है कि संतानोत्पत्ति की जिस भूमिका को नारी शक्ति का स्रोत माना जाता है वह स्त्री को शक्तिहीन और पराधीन बनाती है। इसी प्रकार बीज और धरती (खेत) की विचारधारा के सचेतन प्रचार से नारी की समतुल्य जनन भूमिका को भारतीय समाज में नकार दिया जाता है।

2) 5 (सभी)

बोध प्रश्न 2

1) जाति ने सिर्फ श्रम के सामाजिक विभाजन का निर्धारण ही नहीं किया। बल्कि इसने श्रम के लैंगिक विभाजन को भी तय किया। वर्ण व्यवस्था में स्त्री और पुरुष के लिए अच्छी तरह से परिभाषित भूमिकाएं थी। जातिगत अंतर्विवाह के जरिए वर्ण व्यवस्था ने स्त्री के श्रम और उसकी लैंगिकता पर नियंत्रण बनाए रखा। शुद्धि-अशुद्धिता और अपवित्रता की धारणा ने समूहों को एक दूसरे से अलग किया और महिलाओं की लैंगिकता को नियमित किया।